ISSN 2456-1096
Vol. 1, ISSUE 8-9
Jan.-Feb., 2017

Art, Humanities, Commerce & Science

RESEARCH RIVAL

International Refereed Research Journal

Chief Editor
Dr. Chanderpal Punia

Managing Editor
Dr. Ashwani
Dr. D. Suresh
Subhranshu

Editor
Dr. Ashok Sharma

Organization for Social and Cultural Awareness (Regd.)
Editor
#1166, Gali No. 4, Shanti Nagar
Kurukshetra- 136118 (Haryana) INDIA
Email : researchrival@gmail.com
website : www.oscaindia.com

ISSN : 2456-1096
RESEARCH RIVAL
International Refereed Research Journal
Vol.1, Issue 8-9, Jan.-Feb.,2017

वैदिककालीन नारी की स्थिति का आलोचनात्मक अध्ययन

डॉ. मोहन लाल
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
आई.जी.एन. कॉलेज, लाडवा, कुरुक्षेत्र
(हरियाणा)

शोध लेख सार

प्रस्तुत शोध-पत्र में वैदिककालीन नारी की स्थिति को उजागर करते हुए वर्णित किया गया है कि वैदिक समाज यद्यपि पितृसत्तात्मक था, परन्तु फिर भी समाज में नारी को पुत्री, बहन, पत्नी और माता से रूप में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। पुत्री के रूप में जहां वह लड़कों के समान वैदिक साहित्य का अध्ययन करती हुई हर स्थान पर लड़कों के बराबर दिखाई देती हैं, वहीं पत्नी के रुप में वह पुरुष की अर्धांगिनी, सहधर्मिणी तथा गृहस्वामिनी थी और प्रत्येक धार्मिक कृत्य उसकी उपस्थिति के बिना अधूरा था। माता के रूप में वह पूजनीय थी। वैदिक समाज में कन्या वध, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा व दहेज प्रथा जैसी कुप्रथाएं प्रचलित नहीं हुई थी। विधवा को भी पुनर्विववाह की अनुमति थी। वैदिक काल का अन्त होते-होते नारी की इस आदर्श स्थिति में बदलाव के संकेत दिखाई देने लगते हैं।

मुख्य-शब्द : ऋग्वेद, अथर्ववेद, बृहदारण्यक उपनिषद्, यजुर्वेद ।

आदिकाल से ही समाज में नारी का गरिमामय व महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। नारी को जीवन की आधारशिला माना गया है किसी भी समाज व राष्ट्र की स्थिति को वहां की नारियों की दशा को देखकर ही आंका जा सकता है। वैदिक ग्रन्थों के अनुशीलन से पता चलता है कि वैदिक युग में भी नारी को सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उसे पुरुषों के समान सभी अधिकार प्राप्त थे। अत: नारी को सभी क्षेत्रों जैसे शिक्षा, यज्ञ, विवाह, जीवन निर्वाह, अभिव्यक्ति व विचरण आदि की स्वतंत्रता प्राप्त होना, उसके प्रति सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण का प्रमाण है।[1] इस सकारात्मक दृष्टिकोण में शनैः-2 बदलाव दृष्टिगोचर होता है। जिससे नारी की स्थिति उत्तरोत्तर शोचनीय होती गई। प्रस्तुत शोध लेख में नारी की इसी स्थिति को रेखांकित किया गया है।

ऋग्वैदिक काल में नारी की स्थिति: आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में हमें नारी के गरिमामय एवं आदर्श रूप का वर्णन मिलता है। वस्तुत: यह भी अतिश्योक्ति नही है कि ऋग्वैदिक युग में स्त्री की स्थिति जितनी ऊँची थी, उतनी बाद में कभी नहीं रही।[2] इस काल में नारी प्रत्येक रूप में आदरणीय व पूजनीय थी। पुत्र की भांति पुत्री को भी उपनयन, संस्कार, शिक्षा-दीक्षा एवं यज्ञादि

का अधिकार था।[3] वह अपने पति की सहधर्मिणी एवं गृहस्वामिनी मानी जाती थी। कोई भी धार्मिक कृत्य या यज्ञ पत्नी के बिना पूरा नहीं होता था। स्त्रियां स्वतंत्र रूप से कहीं भी आ जा सकती थी। शैक्षिक दृष्टि से भी ऋग्वैदिक नारियों की स्थिति उच्च थी। वे न केवल साधारण वरन् उच्च शिक्षा प्राप्त करती थी। ऋग्वेद में 24 वैदिक विदुषियों का उल्लेख है। ऋग्वेद में इनके द्वारा रचित 422 मंत्र है। अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, निवावरी, सिकता, लोमशा आदि इस काल की विदुषी स्त्रियां थी।[5] इसके अलावा ऋग्वैदिक स्त्रियां मुख्यत: हस्तकला, गायन, वादन, चित्रकला, पाकविद्या व नर्तन आदि का कार्य भी सिखती थी।[6] कई जगह स्त्रियों के युद्धों में जाने के भी उल्लेख है।[7] इस काल में स्त्रियां राजनीतिक कार्यों में भी भाग लेती थी।[8] पुत्र न होने की अवस्था में पुत्री पिता की सम्पत्ति की भी अधिकारी थी।[9]

इस काल में लड़कियों को विवाह की पूर्ण स्वतंत्रता थी। उनका विवाह व्यस्क होने पर ही किया जाता था। लड़कियों को अपना पति स्वयं चुनने की आजादी थी।[10] गान्धर्व विवाह भी प्रचलित थे। शिक्षा ग्रहण करते हुए जीवन-पर्यन्त अविवाहित रहने वाली 'ब्रह्मवादिनी' कन्याओं का उल्लेख भी ऋग्वेद में मिलता है। ऐसी कन्याओं को 'अमाजु' कहा जाता था।[11] समाज में एक पत्नीत्व की प्रथा थी। यद्यपि कुलीन वर्ग में कुछ लोग कई पत्नियाँ रखते थे।[12] बाल विवाह प्रथा तथा सतीप्रथा आदि कुप्रथाएं प्रचलित नहीं हुई थी। विधवा के पुनर्विवाह की प्रथा भी प्रचलित थी। सन्तानहीन होने पर विधवा अपने देवर या निकट संबंधी से सम्बन्ध स्थापित कर संतान प्राप्त कर सकती थी। इसे नियोग प्रथा कहा जाता था।[13]

कन्या की विदाई के समय उपहार एवं द्रव्य दिये जाते थे जिसे 'वहतु' कहते थे। इसे दहेज प्रथा नहीं एक रस्म कहा जा सकता है।[14] स्त्री की समाज में इतनी उच्च स्थिति होने के बाद भी पुत्रियों की अपेक्षा पुत्र की कामना की जाती थी। उन्हें बचपन में पिता, किशोरावस्था में पति व वृद्धावस्था में पुत्रों का सहारा लेना पड़ता था। ऋग्वेद में इन्द्र ने कहा है कि स्त्रियों का मन संयम में नहीं रखा जा सकता, उनकी बुद्धि भी थोड़ी है। पुन: ऋग्वेद में आया है कि स्त्रियों की मित्रता में सत्यता नहीं होती तथा उनके ह्दय भेडिया का ह्दय है।[15] परन्तु यह उदाहरण अति अल्प है। निष्कर्षत: स्त्री की स्थिति इस काल में उच्च थी।

उत्तरवैदिक काल में नारी की स्थिति: उत्तरवैदिक काल से हमारा तात्पर्य उस काल से है जिसमें तीनों वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों की रचना हुई थी। यह दीर्घकाल है इसमें आर्यों का उत्तर भारत से दक्षिण की ओर विस्तार हो रहा था। इस युग में नारी की स्थिति में महत्त्वपूर्ण बदलाव दिखाई देते है। पूर्वकाल के विपरीत अब समाज में पुत्री के जन्म पर खिन्नता का उल्लेख मिलता है। कन्या का जन्म लेना अब दुख का कारण समझा जाने लगा। अथर्ववेद में पुत्री जन्म की निन्दा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[16]

इस काल में भी स्त्री शिक्षा का प्रचार था। यजुर्वेद में शिक्षित स्त्री के विवाह को ही उपयुक्त बताया है। अथर्ववेद में उल्लेख है कि ब्रह्मचर्य द्वारा कन्या पति की प्राप्ति करती है। इस विवरण से पता चलता है कि लड़कों की भांति कन्यायें भी ब्रह्मचर्या में रहकर शिक्षा प्राप्त करती थी। पूर्ण शिक्षा प्राप्ति पर ही विवाह उपयुक्त माना जाता था। अथर्ववेद में नारियों का पति के साथ यज्ञ करने

का वर्णन है।[17] बृहदारण्यक उपनिषद् में जनक की सभा में गार्गी और याज्ञवल्क्य के वाद-विवाद का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी परम विदुषी थी। उसने अपनी सौत कात्यायनी के पक्ष में अपने साम्पत्तिक अधिकार का विसर्जन करके याज्ञवल्क्य से एकमात्र ज्ञान-दान देने की प्रार्थना की थी।[18] इसके अतिरिक्त घरेलु शिक्षा जैसे पाककला, कताई-बुनाई आदि की शिक्षा भी प्राप्त की जाती है। इस युग में भी कन्या का विवाह युवावस्था में ही होता था। सिद्धांत में न सही पर व्यवहार में जीवन साथी के चयन में कन्या के मत का मूल्य था। विवाह लगभग सजातिय ही होते थे, परन्तु अन्तर्जातीय विवाह भी प्रचलन में थे। विधवा स्त्री को अब भी पुनर्विवाह की आज्ञा थी।[19]

ऋग्वैदिक काल की तरह उत्तरवैदिक काल से भी हमें सती-प्रथा और पर्दा प्रथा के प्रमाण नहीं मिलते हैं। इस काल में अनेक दृष्टिकोण से उच्च शिखर पर होने के बावजूद इस काल के अन्त तक समाज में नारी का स्थान क्रमश: कुछ निम्न होता गया। शतपथ ब्राह्मण में वर्णन मिलता है कि पढ़ते समय स्त्री, शूद्र एवं काले पक्षी की और नहीं देखना चाहिए क्योंकि ऐसे समय इनकों अशुभ माना गया है।[20] मैत्रायणी संहिता में तो उसे जुआ एवं सुरा के साथ-साथ तीन प्रमुख बुराईयों में गिनाया है।[21] बहुविवाह का भी प्रचलित हो चुका था। यज्ञों में पत्नी का स्थान पुरोहितों ने ग्रहण कर लिया जिससे स्त्री की स्थिति समाज में गिरती चली गई। परिणामस्वरूप स्थिति यह हुई कि इस काल के अन्त में नारी का उपनयन संस्कार भी बंद हो गया तथा शिक्षा केवल उच्च वर्ग की स्त्रियों तक सीमित हो गई।[22] इस प्रकार उत्तरवैदिक काल में नारी के अधिकारों का हनन अवश्य हुआ, उसकी स्थिति निम्न हो रही थी। उसके बहुत से अधिकार छीन लिये गए थे और उसे घरेलू कार्यों तक ही सीमित रखने से प्रयास किये जा रहे थे परन्तु फिर भी स्त्रियों की स्थिति में इतनी भी गिरावट नहीं आई थी, जितनी बाद में कालों में दिखाई देती है।

संदर्भ--

1. अम्बिका पारीक, प्राचीन भारत में नारी, पृ. 22-23
2. प्रीतिप्रभा गोयल, भारतीय संस्कृति, पृ. 124
3. वही, पृ. 125
4. अम्बिका पारीक, पूर्वोद्धत, पृ. 27
5. राधाकुमुद मुखर्जी, एन्शिएन्ट इण्डियन एजुकेशन, पृ. 51
6. ऋग्वेद, 1/2/36; 2/32/4; शशि अवस्थी, प्राचीन भारतीय समाज, पृ. 120-121
7. ऋग्वेद, 5/30/9
8. ऋग्वेद, 4/22/7
9. ऋग्वेद, 1/124/7 'अभ्रातेव पुसं एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानाम'
10. ऋग्वेद, 10/27/12, 'भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशा: स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्'
11. अम्बिका पारीक, पूर्वोद्धत, पृ. 30
12. आर.सी.मजूमदार, वैदिक एज, पृ. 390
13. प्रीति प्रभा गोयल, पूर्वोद्धत, 125-126
14. ऋग्वेद, 10/85/13; अथर्ववेद, 14/1/13

15. पी.वी.काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग-1, पृ. 249-50
16. अथर्वेद 6/2/3
17. पी.एल. भार्गव, वैदिक रिलिजन एण्ड कल्चर, पृ. 57-62
18. पी.वी.काणे, पूर्वोद्धृत, पृ. 249
19. आर.सी. मजूमदार, पूर्वोद्धृत, पृ. 454; अम्बिका पारीक, पूर्वोद्धृत, पृ. 29
20. शतपथ ब्राह्मण, 1/3/2/13
21. मैत्रायणी संहिता, 3/6/3
22. पी.वी.काणे, पूर्वोद्धृत, पृ. 250